ज्ञापकतत्त्व-विमर्श

तत्त्व और उसके भेद

जैन दर्शनमें सद्, वस्तु, अर्थ और तत्त्व ये चारों शब्द एक ही अर्थके बोधक माने गये हैं। सद् या वस्तु अथवा अर्थके कहनेसे जिसकी प्रतीति होती है उसीका बोध तत्त्वके द्वारा होता है। इसके दो भेद हैं—१ उपेय और २ उपाय। प्राप्यको उपेय और प्रापकको उपाय तत्त्व कहा जाता है। उपेय तत्त्वके भी दो भेद हैं—१ कार्य और २ ज्ञेय। उत्पन्न होनेवाली वस्तु कार्य कही जाती है और ज्ञापककी विषयभूत वस्तु ज्ञेयके नामसे अभिहित होती है। इसी प्रकार उपायतत्त्व भी दो प्रकारका है—१ कारक और २ ज्ञापक। जो कार्यको उत्पन्न करता है वह कारक उपायतत्त्व कहा जाता है और जो ज्ञेयको जानता है वह ज्ञापक उपाय-तत्त्व है। तात्पर्य यह है कि वस्तुप्रकाशक ज्ञानज्ञापक उपायतत्त्व है तथा कार्योत्पादक उद्योग-दैव आदि कारक उपायतत्त्व है।

प्रकृतमें हमें ज्ञायकतत्त्वपर प्रकाश डालना अभीष्ट है। अतएव हम कारकतत्त्वकी चर्चा इस निबन्ध-में नहीं करेंगे। इसमें केवल ज्ञापक उपायतत्त्वका विवेचन करना अभीष्ट है।

ज्ञापक उपायतत्त्व : प्रमाण और नय

प्रमाण और नय ये दोनों वस्तुप्रकाशक हैं। अतः ज्ञापक उपायतत्त्व दो प्रकारका है—१ प्रमाण और २ नय। आचार्य गृद्धपिच्छने, जिन्हें उमास्वामी और उमास्वाति भी कहा जाता है, अपने तत्त्वार्थ सूत्रमें स्पष्ट कहा है कि '**प्रमाणनयैरधिगमः**' [त० सू० १-६]—प्रमाणों और नयोंके द्वारा पदार्थोंका ज्ञान होता है। अतः जैनदर्शनमें पदार्थोंको जाननेके दो ही उपाय प्रतिपादित एवं विवेचित हैं और वे हैं प्रमाण तथा नय। सम्पूर्ण वस्तुको जानने वाला प्रमाण है और वस्तुके धर्मों—अंशोंका ज्ञान कराने वाला नय है। द्रव्य और पर्याय अथवा धर्मी और धर्म। अंशी और अंश दोनोंका समुच्चय वस्तु है।

प्रमाण और नयका भेद

प्रमाण जहाँ वस्तुको अखण्ड रूपमें ग्रहण करता है वहाँ नय उसे खण्ड-खण्ड रूपमें विषय करता है। यहाँ एक प्रश्न हो सकता है कि ज्ञापक तो ज्ञानरूप ही होता है और प्रमाण ज्ञानको कहा गया है। '**स्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्**', '**सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्**' आदि सिद्धान्तवचनों द्वारा ज्ञानको प्रमाण ही बतलाया गया है, तब नयको ज्ञापक—प्रकाशक कैसे कहा? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि प्रमाण और नय ये दो भेद विषयभेदकी अपेक्षा किये गये हैं। वास्तवमें नय प्रमाणरूप है, प्रमाणसे वह भिन्न नहीं है। जिस समय ज्ञान पदार्थोंको अखण्ड—सकलांशरूपमें ग्रहण करता है तब वह प्रमाण कहा जाता है और जब उनके सापेक्ष एकांशको ग्रहण करता है तब वह ज्ञाननय कहलाता है। छद्मस्थ ज्ञाता जब अपने आपको वस्तुका ज्ञान करानेमें प्रवृत्त होता है तो उसका ज्ञान स्वार्थप्रमाण कहा जाता है और ऐसे ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल पाँचों ज्ञान हैं। किन्तु जब वह दूसरोंको समझानेके लिए वचन-प्रयोग करता है तब उसके वचनोंसे जिज्ञासुको होनेवाला वस्तुके धर्मों—अंशोंका ज्ञान परार्थश्रुत ज्ञान कहलाता है और उसके वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वचन भी उपचारसे परार्थश्रुत ज्ञान माने जाते हैं। तथा वही प्रतिपत्ता उस वस्तुके धर्मोंका स्वयं ज्ञान करता है तो उसका वह ज्ञान स्वार्थश्रुतज्ञान है। आचार्य पूज्यपादने सर्वार्थसिद्धि [१-६] में उक्त प्रश्नका अच्छा समाधान किया है। उन्होंने लिखा है कि—

'तत्र प्रमाणं द्विविधं स्वार्थं परार्थं च। तत्र स्वार्थं प्रमाणं श्रुतवर्ज्जम्। श्रुतं पुनः स्वार्थं भवति परार्थं च। ज्ञानात्मकं स्वार्थं वचनात्मकं परार्थम्। तद्विकल्पा नयाः।'

अर्थात् प्रमाण दो प्रकारका है—१ स्वार्थ और २ परार्थ। इनमें श्रुतको छोड़कर शेष सभी (मति, अवधि, मनःपर्यय और केवल) स्वार्थप्रमाण हैं। किन्तु श्रुत स्वार्थप्रमाण भी है और परार्थ प्रमाण भी है। ज्ञानात्मक श्रुत स्वार्थप्रमाण है और वचनात्मक श्रुत परार्थप्रमाण है। इसीके भेद नय हैं। पूज्यपादके इस विवेचनसे स्पष्ट है कि नय भी ज्ञानरूप हैं और श्रुतज्ञानके भेद हैं।

विद्यानन्दने भी तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक [१-६] में उक्त प्रश्नका सयुक्तिक समाधान किया है। वे कहते हैं कि नय न प्रमाण है और न अप्रमाण, अपितु वह प्रमाणका अंश है। जिस प्रकार समुद्रसे लाया गया घड़े भर पानी न समुद्र है और न असमुद्र, अपितु समुद्रका अंश है। यथा—

नायं वस्तु न चावस्तु वस्त्वंशः कथ्यते यतः।
नासमुद्रः समुद्रो वा समुद्रांशो यथोच्यते॥
तन्मात्रस्य समुद्रत्वे शेषांशस्यासमुद्रता।
समुद्रबहुत्वं वा स्यात्तच्चेत्क्वास्तु समुद्रवित्॥

—त० श्लो० वा० पृ० ११८।

अतः नय प्रमाणरूप एवं ज्ञानरूप होनेपर भी छद्मस्थ ज्ञाता और वक्ताओंकी दृष्टिसे उनका पृथक् निरूपण किया गया है। संसारके सभी व्यवहार नयोंको लेकर ही होते हैं। प्रमाण अशेषार्थग्राहकरूपसे वस्तुका प्रकाशक—ज्ञापक है और नय वस्तुके एक-एक अंशोंके प्रकाशक—ज्ञापक हैं और इस प्रकार नय भी प्रमाणकी तरह ज्ञापकतत्त्व है। आचार्य समन्तभद्रने भी आप्तमीमांसामें प्रमाण और नय दोनोंको वस्तु-प्रकाशक कहा है—

तत्त्वज्ञानं प्रमाणं ते युगपत् सर्वभासनम्।
क्रमभावि च यज्ज्ञानं स्याद्वादनयसंस्कृतम्॥

'सम्पूर्ण पदार्थोंको युगपत् प्रकाशित करनेवाला तत्त्वज्ञान प्रमाणरूप है और क्रमसे होनेवाला छद्मस्थोंका ज्ञान स्याद्वादनयस्वरूप है।'

नयोंका वैशिष्ट्य

ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट है कि जैन दर्शनमें नयोंका वही महत्त्वपूर्ण स्थान है जो प्रमाणका है। प्रमाण और नय दोनों जैन दर्शनकी आत्मा हैं। यदि नयको न माना जाय तो वस्तुका ज्ञान अपूर्ण रहनेसे जैन दर्शनकी आत्मा (वस्तु-विज्ञान) अपूर्ण रहेगी। वास्तवमें नय ही विविध वादों एवं प्रश्नोंके समाधान प्रस्तुत करते हैं। वे गुत्थियोंके सुलझाने तथा सही वस्तुस्वरूप बतलानेमें समर्थ हैं। प्रमाण गूँगा है, बोल नहीं सकता और न विविध वादोंको सुलझा सकता है। अतः जैन दार्शनिकोंने मतान्तरोंका समन्वय करनेके लिए नयवादका विस्तारके साथ प्रतिपादन किया है। वचनप्रयोग और लोकव्यवहार दोनों नयाश्रित हैं। विना नयका अवलम्बन लिए वे दोनों ही सम्भव नहीं हैं। अतः सभी दर्शनोंको इस नयवादको स्वीकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना आवश्यक है। उसके बिना वे न अपने खण्डनका परिहार या प्रतिवाद कर सकते हैं और न अपने दर्शनको उत्कृष्ट सिद्ध कर सकते हैं। न्यायदर्शनमें यद्यपि अपने ऊपर आनेवाले आक्रमणोंका परिहार करनेके लिए छल, जाति और निग्रहस्थानोंका कथन किया है। किन्तु ऐसे प्रयत्न सद्—सम्यक् नहीं कहे जा सकते। कोई भी प्रेक्षावान् असद् प्रयत्नों द्वारा अपने पक्षका समर्थन तथा परपक्षका निराकरण नहीं कर सकता। दर्शनका उद्देश्य जगत्के लोगोंका हित करना और उन्हें उचित मार्गपर लाना है। वितण्डावादसे उक्त दोनों बातें असम्भव हैं। जैन दर्शनका नयवाद विविध मतोंके एकान्तरूप अन्धकारको दूर करनेके लिए नहीं बुझने वाले विशाल गैसोंका काम देता है। मध्यस्थ एवं उपपत्तिचक्षुः होकर उसपर विचार करें तो उसकी अनिवार्यता निश्चय ही स्वीकार्य होगी।

वस्तु अनेकधर्मात्मक है और उसका पूरा ज्ञान हम इन्द्रियों या निरपेक्ष वचनों द्वारा नहीं कर सकते हैं। हाँ, नयोंसे एक-एक धर्मका बोध करते हुए उसके विवक्षित अनेक धर्मोंका ज्ञान कर सकते हैं। द्रव्यार्थिक नयसे विवक्षा करनेपर वस्तु नित्य है और पर्यायार्थिक नयसे कथन करनेपर वह अनित्य भी है। इसी प्रकार उसमें एक, अनेक, अभेद, भेद आदि विरोधी धर्मोंकी व्यवस्था नयवादसे ही होती है।

विवक्षित एवं अभिलषित अर्थकी प्राप्तिके लिए वक्ताकी जो वचनप्रवृत्ति या अभिलाषा होती है वही नय है। यह अर्थक्रियार्थियोंकी अर्थक्रियाका सम्पादक है।

जैन दर्शनमें नयवादका परिवार विशाल है। या यों कहना चाहिए कि जितने वचनमार्ग हैं उतने ही नय हैं। आचार्य सिद्धसेनने सन्मतिसूत्रमें कहा है—

'जावइया वयणवहा तावइया चेव होंति णयवाया।'

जितना वचन व्यवहार है और वह जिस-जिस तरहसे हो सकता है वह सब नयवाद है। वचनमें एक साथ एक समयमें एक ही धर्मको प्रतिपादन करनेकी सामर्थ्य है, अनेक धर्मों या अर्थोंके प्रतिपादनकी सामर्थ्य उसमें नहीं है। **'सकृदुच्चरितः शब्दः एकमेवार्थं गमयति'**—एक बार बोला गया शब्द एक ही अर्थका बोध करा सकता है। इसीसे अनेक धर्मोंकी पिण्डरूप वस्तु प्रमाणका ही विषय होती है, नयका नहीं।

नयके भेद

नयके मूल दो भेद हैं—१ द्रव्यार्थिक और २ पर्यायार्थिक। जो नय मात्र द्रव्यको ग्रहण करता है और पर्यायकी सत्ताको गौण कर देता है वह द्रव्यार्थिक नय है तथा जो द्रव्यको गौण करके केवल पर्यायको विषय करता है वह पर्यायार्थिक नय है। द्रव्यार्थिकके तीन भेद हैं—१ नैगम, २ संग्रह और ३ व्यवहार। पर्यायार्थिक नयके चार भेद हैं—१ ऋजुसूत्र, २ शब्द, ३ समभिरूढ और ४ एवंभूत। द्रव्यार्थिकके तीन और पर्यायार्थिकके चार इन सात नयोंका निरूपग तत्त्वार्थसूत्रकारने निम्न सूत्र द्वारा किया है—

'नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः।' —त० सू० १-३३।

इनका विशेष विवेचन तत्त्वार्थसूत्रकी टीकाओं—सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थवार्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक आदिमें तथा नयचक्र प्रभृति ग्रन्थोंमें किया गया है। विशेष जिज्ञासुओंको वहाँसे उनके स्वरूपादि ज्ञातव्य हैं।

यहाँ स्मरणीय है कि आध्यात्मिक दृष्टिसे निश्चय और व्यवहार नयोंका भी जैन दर्शनमें प्रतिपादन उपलब्ध है। निश्चय और व्यवहारके भेदोंका भी विशद वर्णन किया गया है। इस तरह हम देखते हैं कि नय भी प्रमाणकी तरह वस्तुके बोधक हैं और इसलिए ज्ञापक तत्त्वके अन्तर्गत उनका कथन किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमाणका स्वरूप और उसके भेद

स्व तथा अपूर्व अर्थके यथार्थ निश्चय कराने वाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं। किसी पदार्थको जाननेका प्रयोजन यह होता है कि तद्विषयक अज्ञानकी निवृत्ति हो और उसकी जानकारी हो। जानकारी होनेके उपरान्त प्रमाता उपादेयका उपादान, हेयका त्याग और उपेक्षणीयकी उपेक्षा करता है। इस प्रकार प्रमाणका साक्षात्फल अज्ञाननिवृत्ति और परम्पराफल हानोपादानोपेक्षाबुद्धि है। यह दोनों प्रकारका फल स्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञान द्वारा ही संभव है। अतः जैनदर्शनमें स्वार्थव्यवसायात्मक ज्ञानको प्रमाण माना गया है।

इसके मूलमें दो भेद हैं—१ प्रत्यक्ष और २ परोक्ष। प्रत्यक्षके भी दो भेद हैं—१ सांव्यवहारिक और २ पारमार्थिक। परोक्ष प्रमाणके पाँच भेद हैं—१ स्मृति, २ प्रत्यभिज्ञान, ३ तर्क, ४ अनुमान और ५ आगम। प्रमाणके ये दार्शनिक भेद हैं। आगमकी अपेक्षा उसके पाँच भेद हैं—१ मति, २ श्रुत, ३ अवधि, ४ मनःपर्याय और ५ केवल।

इस प्रकार प्रमाण और नय दोनों ही वस्तुप्रतिपत्तिके अमोघ साधन हैं—उपाय हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org